रोसे-गिले

भाग - १

अकाल पुरुष (ईश्वर) स्वयं निरंजन तथा **निर्मल** है।

हमारे अन्दर उसकी **'ज्योति'** है वह भी **निर्मल** है।

हमारी **'ज्योति'** के चारों ओर '**अहम' का आवरण** चढ़ा हुआ है।

यह 'अहम' कूड़ अर्थात झूठी तथा मैली **'माया'** में से उत्पन्न हुआ है इसलिए हमारा **'अहम' भी मैला है।**

दूसरे शब्दों में हमारी अन्तरात्मा में **इलाही ज्योति तो निर्मल है** परन्तु इसके चारों ओर चढ़ा हुआ **'अहम'** का **'आवरण' मैला है।**

ज्यों ज्यों हमारा अहमग्रस्त **'मन'** माया में विचरण करता तथा गलतान होता है त्यों त्यों इस पर **और अधिक मायिकी मैल चढ़ती** जाती है।

यदि हमारे कपड़ों पर मैल का कोई 'दाग' लगा हो तो यह **'मैल का दाग' 'धूल' को पकड़ता है तथा ज्यादा गाढ़ा होता जाता है।** मक्खियाँ आदि भी मैले तथा गन्दे स्थान पर ही बैठती हैं।

दूसरों के अवगुणों का '**असर'** ग्रहण करने की प्रवृत्ति ही **हमारे मन के मलिन होने की कसौटी है।**

इसी प्रकार यदि हमारे मन पर **'मायिकी मैल'** लगी हुई हो तो यह **अन्य मैली वस्तुओं का असर लेता तथा कबूल करता है,** जिससे **यह और अधिक मैला होता जाता है** । इसलिए माया में विचरण करते हुए **कई जन्मों के मायिकी असर के कारण 'काला स्याह' तथा 'कठोर' हो जाता है ।**

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ **मलु लागी दूजै भाइ ।।** (पृ. ३९)

हंउमै माइआ मैलु है माइआ मैलु भरीजै राम ।। (पृ. ५७०)

जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु।।
खंनली धोती उजली न होवई जे सउ धोवणि पाहु ।। (पृ. ६५१)

काइआ कुसुध **हउमै मलु लाई ।।**
जे सउ धोवहि ता मैलु न जाई ।। (पृ. १०४५)

जिस प्रकार '**काले चश्मे**' (black goggles) के द्वारा सभी **वस्तुएं काली दिखाई देती हैं** चाहे वास्तव में वह किसी भी रंग की हों, उसी प्रकार हमारे मन पर भी '**मायिकी मैल**' का '**काला चश्मा**' चढ़ा हुआ है जिस कारण हमें सभी वस्तुएं **काली या 'मैली' दिखाई देती हैं ।** इसलिए हम किसी भी वस्तु की **अच्छाई या वास्तविकता देखने में असमर्थ हो जाते हैं।**

हमारे मन की ऐसी **मलिन अवस्था** को ही बाणी में '**भ्रम भुलाव**' कहा गया है।

नाम बिना सभु जगु है मैला दूजै भरमि पति खोई ।। (पृ. १२३४)

अगिआनि अंधेरै सूझसि नाही बहुड़ि बहुड़ि भरमाता ।। (पृ. ६१०)

ऐसी भ्रम भुलाव वाली '**दृष्टि**' के द्वारा हमें अच्छी उत्तम दैवीय वस्तु अथवा 'गुणों' का **ज्ञान नहीं हो सकता** अपितु हम इनके **गुणों पर भी अपनी मैली दृष्टि की 'रंगत' चढ़ा देते हैं।** इसी **भ्रम भुलाव वाली दशा को ही अज्ञानता कहा जाता है।**

यह कितनी दुखदायी तथा हास्यप्रद बात है कि जीव की अन्तरात्मा में **इलाही निर्मल 'ज्योति' के होते हुए भी हम जीव** अपने अहम के **भ्रम के अंधकार तथा अज्ञानता में** ही पलच-पलच कर सारा जीवन ख्वार् (नष्ट) कर रहे हैं ।

भूली फिरै दिसंतरी भूली ग्रिहु तजि जाइ ।।
भूली डूंगरि थलि चड़ै भरमै मनु डोलाइ ।।
धुरहु विछुंनी किउ मिलै गरबि मुठी बिललाइ ।। (पृ. ६०)

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. १३३)

आतमराम न पूजनी दूजै किउ सुखु होइ ।।
हउमै अंतरि मैलु है सबदि न काढहि धोइ ।।
नानक बिनु नावै मैलिआ मुए जनमु पदारथु खोइ ।। (पृ. १४१५)

इस अज्ञानता के भ्रम में हमें किसी उच्च, उत्तम, सुन्दर, दैवीय 'विचारों' या **'गुणों'** पर विश्वास अथवा **श्रद्धा भावना ही नहीं उत्पन्न होती** तथा ऐसे ही नाममात्र, ऊपरी, अधूरे मन से ही **धार्मिक दिखलाव कर देते हैं।**

अंतरि मैलु लगी नही जाणै बाहरहु मलि मलि धोवै।। (पृ.१३९)

किरिआचार करहि खटु करमा इतु राते संसारी।।
अंतरि मैलु न उतरै हउमै बिनु गुर बाजी हारी ।। (पृ. ४९५)

माइआ भूले सिध फिरहि समाधि न लगै सुभाइ ।।
तीने लोअ विआपत है अधिक रही लपटाइ ।। (पृ. ६७)

इस प्रकार के मैले मन में से **नीच और 'मलिन ख्याल' अथवा रुचियां ही उत्पन्न होती हैं जैसे –**

शक
शिकायत
रोष
गिले
सड़न
जलन
कुढ़न
घृणा
वैर
विरोध
झगड़े
बदले आदि !

यदि कोई हमसे किसी प्रकार की —

बेइंसाफी
ज्यादति
कपट
विरोध
घृणा
निंदा
दुर्व्यवहार

आदि करे तो मन को **ठेस लगने पर** उस व्यक्ति के प्रति **'रोष' उत्पन्न होता है।**

वास्तव में रोष का मूल कारण **जीव का 'अहम'** (ego) **ही है**। अहम् ही आदर मान, आशा-मनसा तथा कल्पना की **'जड़'** है तथा जब यह पूरी न हो तो मन किसी **अन्य व्यक्ति को 'दोषी' ठहराता है** तथा उसके प्रति रोष, शिकायत, नाराज़गी, नफरत, वैर, विरोध, झगड़ा, टकराव आदि करने लगता है।

यह **'रोष'** सांसारिक जीवों के प्रति होना तो स्वभाविक ही है पर कभी-कभी हम गुरमुख प्यारों, महापुरुषों, साधु-संतों, पीर-पैगम्बरों, गुरू-अवतारों यहां तक कि **'ईश्वर' के साथ रोष करने से भी नहीं झिझकते।**

सतिगुर पुरुखु निरवैरु है नित हिरदै हरि लिव लाइ।।
निरवैरै नालि वैरु रचाइदा अपणै घरि लूकी लाइ।।
अंतरि क्रोधु अहंकारु है अनदिनु जलै सदा दुखु पाइ।। (पृ. १४१५)

यदि कोई हमसे ऐसा व्यवहार करे जो हमें अच्छा न लगता हो अथवा जिस कारण हमारे **अहम्** या मैं-मेरी को **ठेस पहुंचती हो** तो हमारे मन में शिकायत, नाराज़गी तथा **'रोष'** उत्पन्न होते हैं।

वास्तव में हमारा '**अहम्' के रंग में रंगा हुआ मन** ही दूसरों के अच्छे बुरे व्यवहार का बाहरी **अक्स ग्रहण** करता है तथा हमारे '**अहम' की सूक्ष्म तारें 'रोष' की 'तरंगों' के साथ** प्रतिध्वनित होती या **बजने लगती हैं।**

ज्यों-ज्यों हम इन **रोष व गिलों** को '**याद' करते हैं** या इनका **बार-बार अभ्यास करते हैं** अथवा '**रटन' करते हैं** त्यों-त्यों यह '**रोष**' हमारे 'स्वभाव' या जीवन का **'अंग'** बन जाते हैं तथा अंतःकरण में **धस-बस-रस जाते हैं।**

इस प्रकार यह **बार-बार अभ्यास किये हुए 'रोष' के 'भाव' ही हमारा 'व्यक्तित्व'** (personality) **बन जाते हैं। यह दृढ़ किये हुए 'रोष' जब** हमारे **निम्न चेतन मन** (sub-conscious mind) **में उतर जाते** हैं तथा हमारे —

ख्याल
चिंतन
सोच-विचार
फैसले
व्यवहार
कर्म
धर्म

अथवा **जीवन के हर पहलु** में **इनका प्रकटाव होता रहता है।** जिसका परिणाम जीव के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है।

इन '**गिले शिकवों**' के कारण ही धीरे-धीरे हमारा **मन तथा शरीर 'रोगी' हो जाते हैं** । इस विषय में एक शिक्षाप्रद उदाहरण याद आया जो एक पत्रिका रीडरस डाइजैश्ट (Reader's Digest) में इस प्रकार छपा था —

अमरीका में दो सखियां बड़े प्रेम से रहती थी जिनका एक दूसरे से बिछुड़ना भी कठिन था । कुछ समय बाद उनमें द्वेष की भावना आ गई जो बढ़ते-बढ़ते घृणित दुश्मनी में बदल गई। इन सहेलियों में से एक के जोड़ों में दर्द शुरू हो गई, जो इतनी अधिक बढ़ गई कि उसका हिलना-जुलना, उठना-बैठना भी कठिन हो गया उसने बहुत इलाज करवाए परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ।

अन्त में वह किसी **'मानसिक डाक्टर'** (Psychiartist) के पास गई उसने सारी जांच करके कहा कि "तुम्हारा इलाज दवाईयों से कदाचित नहीं हो सकता, तुम्हारा एकमात्र इलाज है जो तुम स्वयं ही कर सकती हो, वह है कि तुम अपनी

सखी के प्रति सारे **"गिले-शिकवे" भुला कर उसे प्यार करो।''** पहले तो यह बात सुनकर वह बड़ी अप्रसन्न हुई कि यह तो कदापि नहीं हो सकता परन्तु "मरता क्या न करता" कहावत के अनुसार जब दर्द अत्यंत बढ़ गई और वह बहुत दुखी हुई तो वह सारे **शिक्वे-शिकायतें भुला कर** तुरंत अपनी **सखी के गले जा लगी,** फिर दोनों सखियां पहले की भांति **प्रेम** से रहने लगीं परिणामस्वरूप दर्द घटती-घटती कुछ महीनों में **बिल्कुल ठीक हो** गई।

इस प्रकार की घटनाएं आम घटती रहती हैं।

हमारे **'मानसिक रोग'** भी 'कोढ़' या **'तपेदिक'** की भांति **दीर्घ तथा ला-इलाज बन जाते हैं।** समझने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि **शारीरिक रोग** तो मृत्यु उपरांत **समाप्त** हो जाते हैं परन्तु दीर्घ **'मानसिक-रोगों'** की **'बुनियाद' हमारे अंत:करण में धंसी होने के कारण हमारे अगले जन्मों में भी हमारे साथ जाती है तथा अगले जीवन को भी अत्यंत दुखदायी बनाती है।** इस प्रकार इन **'मानसिक रोगों'** का **जहरीला चक्र** (vicious circle) **चलता** ही रहता है।

जब हमारी शिकायतें, रोष तथा घृणा आदि का इतना **भयंकर परिणाम** निकलता है तो इससे **बचने के लिए** हमें गम्भीर रूप से विचार तथा प्रयास करना अत्यंत आवश्यक है।

धार्मिक पथिकों के लिए तो यह अत्यंत आवश्यक है कि वह पहले अपने मन से **सारे शिकवे-शिकायतें, रोष, नाराज़गी को संपूर्ण रूप से 'भुलाने' का प्रयत्न करें** क्योंकि जब तक हमारा मन तथा अन्त:करण **निर्मल नहीं होंगे** तब तक हमारे हृदय में **भक्ति भाव उत्पन्न ही नहीं हो सकता।** इसलिए गुरबाणी में यूं वर्णन किया गया है —

मेरे मन काहे रोसु करीजै ।।
लाहा कलजुगि राम नामु है गुरमति अनदिनु हिरदै रवीजै।। (पृ. १२६२)

मनि मैलै भगति न होवई नामु न पाइआ जाइ ।। (पृ. ३९)

'मन' पानी की भाँति चंचल है तथा **हर प्रकार के असर ग्रहण कर लेता है तथा इनका अभ्यास करते हुए इनकों संभाल कर रखता है** अतएव इन के आधीन मैला तथा निर्मल होता रहता है। इन बदलती अवस्थाओं का मूल कारण

है **'मन का बाहरी असर ग्रहण करना' । यह बाहरी असर हमारा 'अहम्'** (ego) **ही ग्रहण करता है।**

उदाहरणस्वरूप एक कथा प्रचलित है — किसी साधु से एक व्यक्ति ने पूछा "आपका नाम क्या है?" उसने उत्तर दिया 'सीतलदास'। कुछ समय बाद उस व्यक्ति ने फिर से वही प्रश्न दोहराया, इस प्रकार उसने साधु से यही प्रश्न कई बार पूछा। हर उत्तर के साथ साधू गरम होता गया और उसके उत्तर में **'तल्खी' आती गई,** अंत में साधु 'सीतलदास' **क्रोधवान** हो कर डंडा ले कर उसके पीछे भागा और **'अग्निदास' बन गया।** इससे स्पष्ट होता है कि अभी साधु का 'अहम्' नष्ट नहीं हुआ था। अहम् को **ठेस पहुँचने के कारण उसने 'रोष' में आ कर 'तलख' व्यवहार किया।**

इस पर और विचार करने के लिए एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है। महात्मा बुद्ध जी को किसी ने बहुत गालियां दी तथा बुरा भला कहा परन्तु महात्मा जी बिल्कुल शान्त रहे । जब वह व्यक्ति गालियां देता-देता थक गया तो महात्मा जी ने एक पत्थर का टुकड़ा उसे पेश करके कहा कि "आप इसे ले लो"। उस व्यक्ति ने उत्तर दिया "मुझे नहीं लेना"। फिर महात्मा जी ने कहा यदि कोई वस्तु किसी को दी जाए और वह उसे **स्वीकार न करे तो वह वस्तु देने वाले के पास ही रह जाती है।** जो गालियां आपने मुझे दी थीं वह **मैने स्वीकार नहीं की** इसलिए वह **आपके पास ही रह गईं ।**

इस दृष्टांत से यह स्पष्ट होता है कि **'अहम्' का** अभाव होने के कारण महात्मा जी ने गालियों का **'असर' ग्रहण नहीं किया,** जिस कारण उन्हें कोई **'रोष' नहीं आया तथा वह शान्त रहे ।**

बाहरी असर लेने या न लेने के विषय में एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है —

यदि कहीं आग जल रही हो तो उसमें से **'चिंगारियां'** चारों ओर फैलती हैं, यदि उसमें से एक चिंगारी सूखी घास-फूस के ढेर पर जा गिरे, तो वह **तत्काल जल कर राख हो जाएगा ।** यदि वही चिंगारी छोटी-छोटी लकड़ियों पर जा गिरे तो वहां **देर तक आग जलती रहेगी।** यदि वही चिंगारी मिट्टी के तेल पर जा गिरे तो **एकदम आग की लपटें जल पड़ेंगीं** और आस पास की वस्तुएं भी जल जाएंगीं। पर यदि वही चिंगारी **पैट्रोल या गैस** पर जा गिरे तो **'बम्ब-विस्फोट'** बन कर दूर दूर तक तबाही मचा देगी।

इसके विपरीत यदि वही चिंगारी सीमेंट या पत्थर पर जा गिरे तो **'चिंगारी' अपने आप बुझ जाएगी** और **पत्थर पर इसका कोई असर नहीं होगा।** यदि वही चिंगारी पानी में जा गिरे तो **पानी पर तो उसका कोई असर होगा ही नहीं उल्टा पानी चिंगारी को ही बुझा कर ठण्डा कर देगा।**

इससे यह सिद्ध हुआ कि **बाहर का असर ग्रहण करना हमारे मन की 'अवस्था' पर निर्भर करता है** अर्थात हमारे मन में **'आग भड़काऊ ग्रहण शक्ति'** (inflammable) जिस मात्रा में होती है उसी मात्रा में (उसी के अनुसार) **ही हम बाहर का असर ग्रहण करते हैं।**

दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य है — **'किसी बाहरी असर को ग्रहण करके बार-बार याद करके** उसका **'अभ्यास' करना।** उदाहरण स्वरूप किसी सास ने अपनी बहु को ताना दिया —

— कुल्लछनी
— कुच्चजी (जिसे काम करने का ढंग न आता हो)
— कंगालों की बेटी आदि।

बहु के मन में यह व्यंगमई **तीक्ष्ण बोल इतने चुभ गए** कि वह 'पीड़ा रूप' बन कर, बार-बार याद करके, चिढ़-चिढ़ कर, उसका **अभ्यास करती रही** जिस कारण उसका मन **रोष, क्रोध, कुढ़न, तथा नफरत की आग में झुलसता रहा** तथा धीरे-धीरे **''रोष की कालिख'' उसके अन्त:करण में धंसती चली गई।** उस मैल का **हानिकारक** असर उसके शरीर, स्वभाव तथा व्यक्तित्व पर पड़ता गया।

मन की इस **मैली दशा** में यदि कोई हमारे साथ बुरा व्यवहार करे तो हम उसे कदाचित **माफ करने के लिए तैयार नहीं होते** अपितु उसके **अन्य उत्तम गुणों पर भी मैली रंगत चढ़ा कर उसे सदा के लिए रद्द** (condemn) **कर देते हैं तथा उसे अपनी काली सूची** (black list) **में शामिल कर देते हैं।**

यदि वह क्षमा भी मांगे तथा अच्छा बनने का प्रयास भी करे तो भी हम उसे अपनी **काली सूची में से निकालने को तैयार नहीं होते।**

इस प्रकार यह **'काली सूची' घटने के स्थान पर और लम्बी होती जाती है।** ऐसा मलिन मन किसी में कोई गुण या **अच्छाई देख ही नहीं सकता** अपितु अच्छाईयों या गुणों **पर भी अपना 'मैला रंग' चढ़ा देता है।**

लोकु अवगणा की बंन्है गंठड़ी गुण न विहाझै कोइ ।। (पृ.१०९२)

भूड़ड़े नामु विसारिआ बूडड़े किआ तिसु चारो ।।
गुणि छोडि बिखु लदिआ अवगुण का वणजारो ।। (पृ.५८०)

यदि **'काली सूची'** वाला कोई जीव **मर भी जाए** तो भी हम उसके प्रति वैर-विरोध तथा गिले शिकवे **कायम रखते हैं।**

हमारे मन-चित्त-बुद्धि-अन्त:करण में इन 'काली-सूची' वालों की **अधिकता है।** इसके **विपरीत** उच्च, उत्तम, प्यारे, गुरमुख अथवा निर्मल **'सफेद सूची'** (white list) वाले जीव बहुत कम होते हैं क्योंकि **हमारे मलिन मन में अच्छे-उत्तम जीवों के प्रति श्रद्धा भाव ही नहीं उत्पन्न होता** इसलिए 'काली सूची' वालों की **बहु संख्या** (majority) हो जाती है तथा धीरे-धीरे इनकी **पूर्ण सम्मति** हो जाती है।

इस प्रकार किसी छोटी सी **उकसाहट** के कारण या किसी विरोधी अथवा 'काली सूची' वाले किसी जीव को **याद करके** हम उसके प्रति **रोष तथा शिक्वों की गांठें या 'मिसलें' खोल कर उसकी पुरानी कहानी दोहरा कर** अपने अन्दर **भूली बिसरी बात को फिर ताजा करके** अपने मन में कुढ़ते रहते हैं। इतना ही बस नहीं हम नित्य-प्रति इस 'काली सूची' में से कभी किसी कभी किसी की **'फाईल' अथवा गांठें खोल** कर **स्वयं ही व्यर्थ जलते-झुलसते, कुढ़ते-सड़ते रहते हैं।** मैनें तो लोगों को यहां तक कहते सुना है "अरे, तुमने क्यों उसका नाम ले लिया, उसका **तो नाम** सुनते ही **मेरे तन-बदन में आग लग जाती है।"**

ऐसे अभागे जीव इस **जहरीले 'अग्नि शोक सागर'** में जन्म लेते हैं, जीवन व्यतीत करते हैं, तथा फिर **मर के यम के बस पड़ते हैं** । यह बाहर से चाहे कोई भी धर्म धारण कर लें परन्तु इनका **आन्तरिक 'निजी-धर्म' रोष, गिले ईर्ष्या, द्वेष, वैर-विरोध के जहर में जलना-झुलसना तथा कुढ़ते रहना ही है तथा इसमें इन्हें 'खुजली' की भान्ति स्वाद आता है।**

इन्हें अपने अन्दर **खुद मचाए हुए जहरीले अग्नि कुंड** के अतिरिक्त अन्य किसी **अच्छे, उत्तम्, सुन्दर, दैवीय गुणों का ख्याल ही नहीं आता या जान-बूझ कर मस्त हुए रहते हैं।**

साध-संगत तथा सतगुरू की कृपा के बिना ऐसे भाग्यहीन जीव **स्वयं जलाई हुई जहरीली भट्टी में से निकल ही नहीं सकते।**

अंचलु गहि कै साध का तरणा इहु संसारु ।। (पृ.२१८)

महा बिखमु अगनि को सागरु साधू संगि उधारे ।। (पृ.६१५)

साधसंगति कै अंचलि लावहु बिखम नदी जाइ तरणी ।। (पृ.७०२)

साधसंगति कै बासबै कलमल सभि नसना ।। (पृ.८११)

भउजलु बिखमु असगाहु गुर सबदी पारि पाहि।। (पृ.९६२)

इस प्रकार हमारा सारा जीवन ही —

शक
रोष
गिले
शिकायतें
अदेसे
डर
ईर्ष्या
द्वेष
जलन
निंदा
चुगली
वैर
विरोध
झगड़े
लड़ाईयाँ
जुल्म

आदि में **जलता, झुलसता तथा कुढ़ता हुआ नरकमयी बन जाता है।**

किसी के प्रति हमारी मलिन अथवा **नफरत वाली भावना केवल हमारे मन, चित्त, बुद्धि, अन्तःकरण को ही नहीं जलाती अपितु दूसरे 'जीव' पर भी इन मलिन भावनाओं की 'लहरें' असर करती हैं तथा** उसके मन में भी **तुच्छ भावनाएं रोष, गिले, घृणा के भाव पैदा हो जाते हैं। धीरे-धीरे हम उसके हृदय में भी अपनी भान्ति तीव्र घृणा, वैर-विरोध की भावनाओं को पक्का कर के तीक्ष्ण तथा दामनिक बनाते जाते हैं।**

यही कारण है कि इतने —

पाठ
पूजा
कर्म
धर्म
धर्म ग्रन्थ
धर्म स्थान
धर्म प्रचार
विद्या केन्द्र
समाजिक संस्थाएं
वैज्ञानिक उन्नतियों

के बावजूद —

हृदय में
घरों में
पड़ोस में
मोहल्लों में
गांवों में
शहरों में
कौम में
देशों में
विश्व में

शक, भ्रम, रोष, गिले, ईर्ष्या-द्वेष आदि 'बढ़ते' जा रहे हैं, जिस कारण

सम्पूर्ण विश्व में घृणा तथा वैर-विरोध, खींचतान, लड़ाईयाँ तथा अत्याचार का बोलबाला प्रचलित हो रहा है।

'मनुष्य' को ईश्वर ने अपनी **'शिरोमणी संतान'** बना कर अन्य जीवों की अपेक्षा **विशेष गुण प्रदान किये हैं, सर्वोच्च (अशरफुल मखलुकात) स्थान दिया तथा सांसारिक निर्वाह और सुख शान्ति के लिए अनेक प्रकार की प्राकृतिक बखशिशें प्रदान की।** परन्तु मनुष्य के लिए अत्यन्त अफसोस तथा **खेद की बात है** कि इसने इस —

सुहावनी सृष्टि
सच्चे की कोठड़ी
''बलिहारी कुदरत''
स्वर्ग-रूप
जग-वाड़ी (बगीचा)

'सृष्टि' को अपने अहमग्रस्त मलिन मन के —

तुच्छ विचारों
मलिन भावनाओं
तुच्छ वासनाओं
स्वार्थ
शक
रोष
गिले
ईर्ष्या
द्वेष
निंदा
घृणा
ऐलरजी (allergy)
वैर
झगड़े
लड़ाईयां
अत्याचार

द्वारा —

‘आतिश दुनिया’
‘अग्नि शोक सागर’
‘भवजल बिखम सागर’
‘घोर नर्क’
‘अग्नि कुंट’
‘चिंता-चिता’
‘दुख कलेश’

में **बदल दिया है।** इस प्रकार हम संपूर्ण रूप में घोर **पाप कमा रहे हैं।**

हम घर के अन्दर तथा बाहर वातावरण को **साफ रखने का यत्न** नित्य प्रति करते हैं। घरों में झाड़ू लगा कर पोचा लगा कर तथा घर के मेज कुर्सियां फर्नीचर(furniture) दरवाजे खिड़कियों आदि को झाड़ते पोंछते हैं।

इस प्रकार सारा परिवार घर की **अन्दर-बाहर की सफाई का प्रयास करता है।**

यदि बच्चे कूड़ा करकट या छिलके आदि को घर में लापरवाही से फैंके तो हम बच्चों को डांटते हैं तथा उसी समय सफाई करते हैं।

यदि आंधी आ जाए तो हम तत्काल खिड़कियां दरवाजे बन्द कर देते हैं ताकि बाहर से कूड़ा करकट तथा धूल अन्दर न आ जाए, आंधी के बाद सारे घर की सफाई की जाती है।

इतनी सावधानी के बावजूद भी हमें घरों में प्रतिदिन अन्दर-बाहर की सफाई करनी पड़ती है।

शरीर को साफ रखने के लिए नित्य प्रति साबुन लगा कर नहाते हैं तथा कई बार मुंह–हाथ धोते हैं पर फिर भी शरीर मैला हो जाता है तथा दुबारा नहाना पड़ता है।

इसी प्रकार हम प्रतिदिन मैले कपड़े उतार कर साफ-सुथरे कपड़े पहनते हैं जो शाम तक फिर मैले हो जाते हैं, जिस कारण हमें प्रतिदिन कपड़े धोने पड़ते हैं।

ऊपर दर्शाए गए दैनिक जीवन से स्पष्ट है कि हमें **अपनी शारीरिक सफाई तथा आस-पास की सफाई का गहरा अहसास है तथा इसके लिए हम अत्याधिक प्रयत्न, साहस तथा परिश्रम करते हैं और व्यय भी करते हैं।**

बाहरी शारीरिक तथा वातावरण की

'मैल से बचने' तथा
'सफाई रखने'

की यह 'प्रेरणा' अथवा 'प्रवृत्ति' हमारे अंदर कुदरती या स्वाभाविक ही होती है परन्तु इसकी श्रेणियां भिन्न-भिन्न मनों की ''अहसास शक्ति'' पर आधारित हैं।

यह **''प्राकृतिक अहसास शक्ति''** हमारे इस 'जीवन' को किसी हद तक सुखी रखने में सहायक तथा लाभदायक है।

परन्तु **आश्चर्य** की बात है कि जहां हम **शरीर की बाहरी सफाई के प्रति इतने जागरूक हैं तथा प्रयत्न करते हैं —वहां हमें अपनी —'आंतरिक मानसिक मैल'**

का —

ध्यान नहीं आता
ख्याल नहीं आता
अनजान हैं
बेपरवाह हैं
लापरवाह हैं
जान बूझ कर मस्त रहते हैं ।

यद्यपि सभी **धर्म** तथा **धर्म ग्रंथ** हमें इस **'आंतरिक मानसिक मैल' के सम्बन्ध में 'प्रताड़ित' करते हैं तथा इससे बचने का उपदेश देते** हैं परन्तु हम इन **ताड़नाओं तथा दैवीय उपदेशों की ओर ध्यान ही नहीं देते,** गौर ही नहीं करते या **ठाठा-बागा (दिखावा मात्र)** ही कर देते हैं।

गुरबाणी इस मानसिक मैल के विषय में यूं ताड़ना करती है —

वसत्र परवालि परवाले काइआ आपे संजमि होवै ।।
अंतरि मैलु लगी नही जाणै बाहरहु मलि मलि धोवै ।। (पृ.१३९)

मनि मैलै सभु किछु मैला
तनि धोतै मनु हछा न होइ ।। (पृ.५५८)

अंतरि मैलु लोभ बहु झूठे बाहरि नावहु काही जीउ ।। (पृ.५९८)

काइआ मांजसि कउन गुनां ।।
जउ घट भीतरि है मलनां ।।१।।रहाउ।।
लउकी अठसठि तीरथ न्हाई ।।
कउरापनु तऊ न जाई ।। (पृ.६५६)

बाहर की सफाई का लाभ इस जन्म के **बाहरमुखी जीवन तक ही सीमित है** — परन्तु **आंतरिक मानसिक 'मैल'** का परिणाम इस जन्म के इलावा **अगले जन्मों में भी भोगना पड़ता है।**

हउमै मैला जगु फिरै मरि जंमै वारो वार।।
पइऐ किरति कमावणा कोइ न मेटणहार।। (पृ.७५६)

परन्तु फिर भी हम अपना **सारा ध्यान, उपाय तथा प्रयत्न केवल 'बाहरी सफाई' तक ही सीमित रखते** है तथा अपनी **''आन्तरिक मानसिक मैल'' की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते।**

हमारी —

उच्च विद्या
आधुनिक विज्ञान
नवीन सभ्यता
धार्मिक प्रचार

के बावजूद हमें अपनी इस **दीर्घ अधोगति की सूझ अथवा ज्ञान ही नहीं होता** तथा हम अपनी **''आंतरिक मानसिक मैल'' के विषय में जानने बूझने या अनुभव करने में असमर्थ हैं।**

इस प्रकार हम **बे-ध्यान** ही अपनी मानसिक तथा आध्यात्मिक अज्ञानता के भ्रम भुलाव में अपनी **'आंतरिक मानसिक मलिनता'** को नित्य प्रति और **अधिक बढ़ा रहे हैं** तथा अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ गंवा रहे हैं।

यही कारण है कि हमारे बाहरमुखी —

पाठ-पूजा
कर्म क्रिया

तीर्थ स्नान

पुण्य-दान

योग अभ्यास आदि

का हमारे 'जीवन' पर असर नहीं होता।

इसलिए हमारे जीवन में रोष, **गिले-शिकवे, ईर्ष्या, द्वेष आदि बढ़ते जा रहे हैं तथा हमारी मानसिक और आध्यात्मिक अवस्था गिरती जा रही है।**

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ मलु लागी दूजै भाइ ॥
मलु हउमै धोती किवै न उतरै जे सउ तीरथ नाइ ॥
बहु बिधि करम कमावदे दूणी मलु लागी आइ ॥
पड़िऐ मैलु न उतरै पूछहु गिआनीआ जाइ ॥ (पृ.३९)

सोच करै दिनसु अरु राति ॥
मन की मैलु न तन ते जाति ॥
इसु देही कउ बहु साधना करै ॥
मन ते कबहू न बिखिआ टरै ॥
जल धोवै बहु देह अनीति ॥
सुध कहा होइ काची भीति ॥ (पृ.२६५)

किरिआचार करहि खटु करमा इतु राते संसारी ॥
अंतरि मैलु न उतरै हउमै बिनु गुर बाजी हारी ॥ (पृ.४९५)

सिधा के आसण जे सिखै इंद्री वसि करि कमाइ ॥
मन की मैलु न उतरै हउमै मैलु न जाइ ॥ (पृ.५५८)

मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए ॥
मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए ॥ (पृ.६४२)

क्रमशः